IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 5, October 2026
Impact Factor: 8.2

ikphu Hkkjr esa ik"kk.k ,oa /kkrq fufeZr midj.k % ,d v/;;u

Mk- inhi flag
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
टी. डी. पी. जी. कालेज, जौनपुर, उ. प्र.

प्राचीन काल से ही मानव के जीवन यापन एवं आर्थिक विकास में उपकरणों एवं औजारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है पाषाण काल से ही मानव इसका प्रयोग अपनी क्षुब्धा पूर्ति हेतु शिकार करने एवं कृषि कार्य हेतु करता चला आ रहा है। मानव के जीवन एवं आर्थिक विकास में इन्हीं उपकरणों एवं औजारों को महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

प्राचीन समय में सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ विभिन्न व्यवसायों और उद्योगों में वृद्धि होती गई। ये आर्थिक और सामाजिक दृष्टि महत्त्वपूर्ण थे। देश और समाज की समृद्धि में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।[1] पुरापाषाण काल में क्षेत्र सीमित था और जनसंख्या का विस्तार नहीं हुआ था। मनुष्य जंगली और असभ्य थे। उनका मुख्य व्यवसाय शिकार था। शिकार तथा अन्य कार्यों के लिए वे पाषाण के औजारों का प्रयोग किया करते थे। जैसा कि शिकारी द्वारा उपयोग में लाए गये पत्थर के औजार पाए गये है। इन औजारों को इनके प्रकार तथा काल के अनुसार मध्यपाषाणीय, पुरापाषाणीय आदि वर्गो में विभाजित किया गया है। मध्य पाषाण युग में भी प्रस्तर के उपकरण प्राप्त हुए हैं। मध्य पाषाण युग का आरम्भ ई०पू० 10,000 से 6000 ई0पू0 के आस–पास हुआ। यह पुरापाषाण युग और नवपाषाण युग के बीच का संक्रमण काल है। धीरे–धीरे तापक्रम बढ़ा, मौसम गर्म और सुखा होने लगा। परिवर्तन से मनुष्य का जीवन प्रभावित हुआ। पशु–पक्षी तथा पेड़–पौधों की किस्मों या प्रजातियों में भी परिवर्तन आया। औजार बनाने की तकनीक में परिवर्तन हुआ और छोटे पत्थरों का उपयोग किया जाने लगा। मनुष्य मूलतः शिकारी संग्रहकर्ता ही रहा, पर शिकार करने की तकनीक में परिवर्तन हो गया। अब न केवल बड़े बल्कि छोटे जानवरों का भी शिकार करने लगा। मछलियाँ पकड़ने लगा और पक्षियों का भी शिकार करने लगा। यह भौतिक और पारिस्थितिकी परिवर्तन पत्थर पर हुई चित्रकारी से भी प्रतिबिम्बित होता है। नव पाषाण काल में उपकरणों की संख्या पहले की अपेक्षा अधिक विकास हुआ। नये सुधारों और बहुप्रकाशीय तथा बहुमूल्य पत्थरों से चर्ट, अगेट, चैलसेडनी आदि के औजार भी बनने लगे थे। ये अब अत्यन्त सुन्दर तथा पॉलिशयुक्त बनाये जाते थे। इनसे कुटने–पीसने के भी समान बनने लगे थे, जो छोटानागपुर, मालावार, नीलगिरी तथा मैसूर से भी मिले है। हड्डी के उपकरण चिराद (बिहार) तथा बुर्जहोम से प्राप्त हुए है। मनके भी विभिन्न प्रस्तरों और आकारों के मिले है। इस युग में मनुष्य ने अन्नोत्पादन शुरू कर दिया था। मिट्टी के बर्तनों का व्यवहार भी प्रचलित हो गया था, तभी इस काल के स्तर से भद्दे बर्तनों के टुकड़े मिले है। इस समय पॉलिस उद्योग की भी जानकारी मिलती है, क्योंकि इस काल में पॉलिश किये हुए पाषाण उपकरण मिले है तथा मिट्टी के बर्तन भी मिले है, हड्डी के औजार भी मिले है। इस काल में कुछ ऐसे गड्ढे मिले हैं, जिनमें अस्थिपंजर भरे हैं और उनको भरने के उपरान्त उनके ऊपर गेरू वाली मिट्टी का पलास्टर किया गया है। अस्थि के उपकरण भी प्राप्त हुए है, जैसे टेकुआ, बर्डी, वाणाग्र, मत्स्यमाला आदि।[2] हडप्पा सभ्यता में भी औजारों या उपकरणों की जानकारी मिलती है। इस सभ्यता के निवासियों द्वारा इस्तेमाल किये गये औजारों और उपकरणों के आकार–प्रकार

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

तथा उत्पादन की तकनीक में भी आश्चर्यजनक एकरूपता दिखाई पड़ती है। वे ताँबा, कांसा और पत्थर के बने औजारों का प्रयोग करते थे, उनके मूल औजार ताँबे तथा कांसे के बने थे। इनमें भाले, चपटी, कुल्हाड़ी, छेनी, चाकू, गदा, तलवार, या वाणाग्र और गोफन गोलियाँ मुख्य रूप ये पाये जाते है।[3] सभ्यता के आगे के चरणों में वे छुरे, चाकू और चपटे तथा तीखी नोक वाले औजारों को भी प्रयोग करने लगे थे। वे कांसे और तांबे की ढलाई की तकनीक जानते थे। पत्थर के औजारों का भी उपयोग किया जाता था। सिन्धु घाटी और आस–पास के क्षेत्र (जैसे सुक्कुर) उद्योग क्षेत्रो में इस औजारों का निर्माण बड़े पैमाने पर किया जाना था और फिर ये औजार विभिन्न शहरी केन्द्रों को भेजे जाते थे। औजारों के आकार प्रकार में एकरूपता का यही काम था। ''प्रारम्भिक हडप्पा'' काल के औजार बनने की परम्पराओं में विविधता थी, लेकिन बाद में हुई कुछ प्रगति के युग में हडप्पा सभ्यता के निवासियों ने लम्बे, पैनी धार वाले, सुव्यवस्थित औजारों का ही निर्माण किया जो उनकी उच्चस्तरीय क्षमता और विशिष्टता का संकेत देते है, पर इन औजारों को सुन्दर बनाने और उनमें नवीनता लाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियाँ अस्तित्व में आयी, यह संस्कृतियाँ न तो शहरी थी और न ही हडप्पा संस्कृति की तरह थी, बल्कि पत्थर एवं तांबे के औजारों का इस्तेमाल इन संस्कृतियों की अपनी विशिष्टता थी, अतः यह संस्कृतियाँ ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों के नाम से जानी जाती है। इस काल में विभिन्न तरह के उपकरणों में श्रृंगिका तलवार, वेधनी, कुल्हाड़ी, आदि प्रमुख थे। इस काल में सीमित रूप से लौह उपकरणों का प्रयोग होने लगा था। कृषि उपकरणों में हल, हसिया (दात्र, सृणी) कुदाल (खनित) सूर्प, छाननी (तिनौ) प्रमुख थे।[4] दक्कन तथा दक्षिण भारत में जो महापाषाणीय उपकरण कब्रों से मिलें हैं उनमें से साफ जाहिर होता है कि महापाषाण निर्माता कृषिजीवी तथा हस्तशिल्पी थे, जो लोहे के उपकरणों के साथ–साथ ऐसे मृद्भाण्डों का इस्तेमाल करते थे, जो कृष्ण–लोहित मृद्भाण्ड के रूप में विख्यात है।[5] महापाषाण युग के सभी स्थलों, विदर्भ (मध्य भारत) में नागपुर के समीप जुनापनी से लेकर दक्षिण में आदिचानलूर तक लगभग 1500 कि०मी० के क्षेत्र में लोहे के औजार समान रूप से पाये गये हैं। लोहे की विभिन्न प्रकार की औजारे तथा, चपटी, लोहे की कुल्हाड़ियों जिसे पकड़ने के लिए लोहे का दस्ता होता था, उभरे हुए चपटे किनारे के विभिन्न फावड़े, बेलचे, खुरचनी कुदाले हसिये, फरसे, सब्बल, बरछे, छुरे, छेनी अथवा बसूले, कटारे, तलवारे, तीर के फाल तथा बरछे के फाल (जिनमें से कुछ के दस्तो में कास्य के आभूषण जड़े है) तीर के फाल तथा बरछे के फाल जिनके पात्र खोखले है, विशेष अवसरों के लिए सीप जड़ित कुल्हाड़ियों, लोहे के त्रिशूल आदि उपकरण प्राप्त हुए है। वैदिक काल के लोग लोहे तकनीक का प्रयोग नहीं करते थे। यद्यपि उन्हे ताँबे की जानकारी थी, परन्तु ये औजार लोहे के औजार की तुलना में कम उपयोगी थे। पत्थर के औजारों (कुल्हाड़ी) का प्रयोग किया जाता था और इसका वृतान्त ऋग्वेद में हुआ है, हासिया, कुदाल और कुल्हाड़ी का प्रयोग शायद जंगलों को काटकर साफ करने या परिवर्तित खेती के लिए किया गया। उत्तर वैदिक काल के ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में लोहे के नोक वाले हल एवं कुदाल ने कृषि यन्त्रों की क्षमता को बढ़ाया, जिससे कृषि के कार्यों का फैलाव हुआ, इसलिए विद्वानों का मानना है कि लोहे के प्रयोग ने कृषि अर्थव्यवस्था को और विकसित करने में विशेष योगदान दिया। इस काल में उत्खनन से जो सामग्री प्राप्त हुई हैं, उनमें मुख्य रूप से नुकीले लोहे के तीर, नुकीले भाले आदि हथियार है, इनमें से अधिक चीजे अहिच्छत्र की खुदाई से प्राप्त हुई है। उत्खनन से हंसिया, कुदाल व कुल्हाड़ी बहुत कम संख्या में प्राप्त हुई है। लोहे के प्रयोग ने पहली शताब्दी ई० पू० के उत्तरार्द्ध तक कृषि तकनीकी को तब तक प्रभावित नहीं किया, जब तक गंगा घाटी की दलदली तथा अन्य वनों की खेती के लिए साफ नहीं कर लिया गया। 1000 ई० पू० के आसपास भारतीयों ने लोहे को पिघलाने की कला में कुशलता प्राप्त कर ली थी, जिससे औजारों के निर्माण में सुविधा हुई। फलतः आगे आने वाली तीन या चार

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

शताब्दियों में लोहे का प्रयोग बढ़ता गया। मौर्ययुगीन अर्थव्यवस्था में उद्योगों का विशेष महत्व था। मेगस्थनीज के अनुसार भारत के लोग विभिन्न व्यवसायों द्वारा जीवन–यापन करते थे, और शिल्पी कृषकों को औजार बनाकर देते थे।[6] मौर्य युगीन शिल्पों का विवरण मुख्यतः अर्थशास्त्र में मिलता है। खनिज विद्या को वस्तुतः मौर्य काल में ही पहली बार वैज्ञानिक आधार पर विकसित किया गया था। अर्थशास्त्र में राजकोष को खानों पर आधारित बताया गया है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में सभी धातुओं की बहुत सी खाने है, जिनमें सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि पर्याप्त मात्रा में उत्पादित होता है।[7] धातुओं के आभूषण, अस्त्र–शस्त्र बनाये जाते थे। भारत में लोहा और तांबा तो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। सोने की भी खाने थी, किन्तु चांदी की कमी थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि मौर्य काल में खानों से अनेक धातुऐं निकाली जाती थी। कच्ची धातुओं को साफ करके अनेक मिश्रित धातुऐ बनाये जाने की जानकारी मिलती है। गौतम बुद्ध ने किस प्रकार लुहार धौकनी से लोहे को पिघला कर उसे चाहे जिस आकार का बना लेता था, इसका वर्णन दीर्घ निकाय में किया है।[8] इससे स्पष्ट है कि बुद्ध के जीवन काल में ही धातु–विज्ञान की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। मौर्य काल में धातु उद्योग को राजकीय संरक्षण प्राप्त था, जिससे इसका अत्यधिक विकास हुआ। रामशरण शर्मा का मत है कि राज्य की शक्ति का मुख्य स्रोत मौर्यकाल में धातु उद्योग ही था। इस काल में सोना, चांदी, तांबा, सीसा, टिन, लोहा और डामर धातुओं का प्रयोग किया जाता था। खानों का विभाग आकराध्यक्ष के अधीन था और खन्वाध्यक्ष लोहाध्यक्ष, सुवर्णाध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष उसी के अधीन कार्य किया करते थे। आकराध्यक्ष, धातु विद्या (धातुओं के विषय में सभी प्रकार की जानकारी) और रसपाक का ज्ञाता होता था।[9] 'लोहाध्यक्ष' का अर्थशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख है, धातु उद्योग से केवल आय ही नहीं होती थी, इससे राज्य को शक्तिशाली एवम् समृद्धिशाली बनाने में भी सहायता मिली। कृषि के विकास से भू–राजस्व उगाही हेतु सैनिकों को धातुओं के अस्त्र–शस्त्र पर्याप्त मात्रा में मिले। कौटिल्य को धातु उद्योग के महत्व को पूरी जानकारी थी। जब धातुओं के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त हो गई तो धातु के काम करने वालो के कार्य का विभाजन होकर विशिष्टीकरण होने लगा। मिलिन्दपन्हों में सोना, चाँदी, सीसा, टिन, तांबा, पीतल और लोहे की वस्तुएँ तथा उपकरण बनाने वालो के अलग–अलग नाम मिलते है, परन्तु गाँव में सबसे अधिक महत्व लुहारों का था। लुहारों के लिए 'कम्मार' शब्द का उल्लेख मिलता है। जो धातु व्यवसायी के लिए प्रयुक्त था।[10] लुहारों के अलग गाँव (कम्मार ग्राम) थे।[11] कम्मार ग्राम में सारे जनपद के लोगों का फावड़ा, छुरा, हसियाँ आदि लोहे के उपकरण तैयार किया जाता था।[12] जैनग्रंथ से ज्ञात होता है कि इनके प्रमुख उत्पादक उपकरण थे–अपफोट्ट, सडसी, अहिकरणी आदि जिनमें गाँव वाले कुठार, फाल, चाबुक का अग्रभाग आदि बनवाते थे।[13] गाँव के किसान लुहारों को फसल तैयार होने पर कुछ अन्न उसके वेतन के रूप में देते थे। जातकों से भी ज्ञात होता है कि लुहार काफी अच्छे औजार बनाते थे, लुहार किसानों, मालियों, बढ़इयों के लिए औजार तो बनाते ही थे, वे युद्ध के लिए कवच, सिर के टोप और हथियार भी बनाते थे।[14] मौर्य काल में लुहारों को आर्थिक सहायता दी जाती थी और यदि कोई व्यक्ति उनकी आँख या हाथ को हानि पहुँचाता था तो उसे मृत्युदण्ड की सजा दी जाती थी। लोहे के शस्त्रों का इतना महत्व था कि अर्थशास्त्र में शस्त्रों के निरीक्षक के कार्यों का अलग अध्याय में वर्णन किया गया है।[16] इस काल में तीर बनाने वाले (उसुकार) लुहारों से अलग विद्यमान थे इससे स्पष्ट है कि इस काल में शिल्पियों में विशिष्टकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी।[17] ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में भारतीय लोहे से इस्पात बनाना भली–भाँति जानते थे, किन्तु वे इस पर पानी रखना नहीं जानते थे।[18] पेरिप्लस में लिखा है कि भारत से लोहे और इस्पात की बनी वस्तुएँ एव औजार अफ्रीका के बन्दरगाहों को भेजी जाती थी।[19] स्ट्रैबो ने लिखा है कि भारत में अतिथियों को तांबे के बर्तनों में खिलाया–पिलाया जाता था। मार्शल के अनुसार भारत के धातुकारों ने ईसा–पूर्व तृतीय सदी में पश्चिमी देशों से पीतल बनाने की तकनीक सीखी थी।[20] कौटिल्य ने तीक्ष्ण (लोहे) तथा इस्पात और विभिन्न

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

खनिजों की खानों के अभिज्ञान पर भी प्रकाश डाला है, उनके अनुसार जो भूमि कौए के समान काले रंग की एवं कबूतर की आकृति जैसी सफेद रेखाओं वाली और दुर्गन्धयुक्त हो, वहाँ सीसे की खान होने की संभावना होती है।[21] अस्त्र–शस्त्र निर्माण उद्योग भी पूर्णरूपेण सरकारी नियत्रण में था और इसे आयुधागाराध्यक्ष के अधीन रखा गया था। वह युद्धोपयोगी विभिन्न अस्त्र–शस्त्र, यत्र, चक्र, कवच के निर्माण के लिए कुशल कारीगर नियुक्त करता था। अर्थशास्त्र में तीन प्रकार की तलवारे, पाँच प्रकार के वाण, सात प्रकार के कटार एव कवच आदि वर्णित है।[22] मालवों और क्षुद्रकों द्वारा सिकंदर को भेंट की गई वस्तुओं में 'स्वेत लौह' यानी आधुनिक स्टील/इस्पात के लगभग 100 टैलेटस उपहार में दिये थे जो उस समय की उन्नति भारतीय धातु कर्म का प्रमाण था।[23] मौर्य काल में यद्यपि आन्ध्र और कर्नाटक के अनेक स्थलों पर लोहे के हथियार ओर औजार मिले है, फिर भी लौह–प्रौद्योगिकी के विकास में महापाषाणीय शवधानों के निर्माण का योगदान था, जो विभिन्न प्रकार के बड़े–बड़े प्रस्तर शवाधान जिनमें गोलाकार शवाधान भी बनाते थे। किन्तु इनमें से कुछ स्थानों के अशोक कालीन अभिलेखों, उत्तरी काले पॉलिशदार मृद्भाण्डों आदि, तीसरी सदी ई० पू० के है। उदाहरण के लिए कुछ मौर्यकालीन अभिलेख अमरावती में मिले है। भारतीय प्रायद्वीप में स्तरित उत्तरी काले पालिशदार मृदभाड के ठीकरों की सबसे बड़ी संख्या भी शायद यही से प्राप्त हुई है।[24] खास तरह की मौर्यकालीन पॉलिश वाले ग्रेनाइट स्तम्भ भी यहाँ से प्राप्त हुए है, जिन पर अभिलेख उत्कीर्ण है।[25] आन्ध्र प्रदेश में और कर्नाटक राज्य में कई स्थानों पर अशोक कालीन अभिलेख मिले है। देश के कुछ भागों में इस्पात बनाने की कला भी मौर्य संपर्क के माध्यम से पहुँची होगी। लगभग 200 ई० पू० या इससे भी पहले की कुछ इस्पात की बनी चीजे मध्य गंगा द्रोणी में मिली है।[26] लकड़ी का सब काम करने वाला बडठकि (बढ़ई) कहलाते थे किन्तु लकड़ी पर रन्दा करने वालों और खराद पर काम करने वालों के लिए क्रम से तक्षक और भ्रमकार शब्द प्रयुक्त किये गये है। इससे स्पष्ट है कि लकड़ी के काम में विशिष्टीकरण की प्रक्रिया कार्य कर रही थी।[27] बढ़ई मकान बनाने के लिए शहतीर और तख्ते बनाने थे।[28] वे खाट और पीढ़े आदि भी बनाया करते थे।[29] वे गाड़ियों का निर्माण भी किया करते थे।[30] मेगस्थनीज ने बढ़इयों और लकड़हारों का उल्लेख किया है जो पेड़ काटकर विविध वस्तुएँ बनाते थे।[31] पाटलिपुत्र का काष्ठ निर्मित अन्य मौर्य राजप्रसाद काष्ठ उद्योग एवं स्थापत्य की पर्याप्त विकसित स्थिति का प्रमाण प्रस्तुत करता है, जिसके निर्माण में भिन्न–भिन्न प्रकार के औजारों का इस्तेमाल किया गया था। बौद्ध तथा जैन ग्रथो में नाव, शिविका, रथ, शकट आदि वाहनों का उल्लेख है,[32] जो काष्ठ से ही बनाये जाते थे और इनके बनाने वाले बढ़ई थे। बढ़ईगिरी का व्यवसाय बहुत ही प्रसिद्ध था। वन सम्पदा की अधिकता से नाव, बॉस की सामाग्रियों आदि का प्रयोग बहुतायत से किया जाता था। मौर्योत्तर काल में भी धातु उद्योगों में प्रगति की प्रक्रिया निरन्तर चल रही थी। मिलिदपन्हों में सोना, चांदी, सीसा, तांबा, लोहा, पीतल एव टीन के कारीगरों के विवरण है।[33] महाभाष्य[34] में खनक (खान खोदने वाला) का उल्लेख है। धातुओं को साफ करने, गलाने, ढालने, जोड़ने तथा मिश्रण की तकनीक में भी उन्नति हुई थी।[35] पतंजलि ने धातु का मानव एवं पशु की मूर्तियाँ बनाने वाले कारीगरों का भी उल्लेख किया है।[36] धातुओं में लोहा तथा तांबा सबसे अधिक उपयोगी थे। लोहे के लिए अयस[37] एव अयो[38] शब्द प्रयुक्त हुए है और लोहार के लिए अयस्कार तथा कम्मार शब्द प्रयुक्त हुआ है। पतंजलि ने लोहार एवं ठठेरे, दोनों के लिए कमरि शब्द का प्रयोग किया है।[39] लोहार द्वारा चमड़े की धौकनी से आग की लौ तेज करके लौहे को गर्म करने के बाद इसे सड़सी से पकड़कर अयोधन पर पीटने का भी विवरण है।[40] याज्ञवल्क्य[41] के अनुसार तपाये जाने पर लोहे का भार 100 पल में 10 पल कम हो जाता है। इस काल में दक्षिण भारत में लोहे के उपकरण खासकर युद्ध के औजार एव कृषि उपकरण हमें प्राप्त होते है।[42] इस काल में लोहे के कृषि उपकरण, अस्त्र–शस्त्र, जंजीर, कुदाल, हसिया, अकुश, लगाम, कील तथा अन्य बहुत से औजार बनती थी। गाड़ी एवं रथ के पहिए में भी लोहे का प्रयोग किया जाता था। पतंजलि ने लोहे की

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

थाली, भगौने, लोटे, कटोरे, एव कलश आदि का उल्लेख किया है।[43] चाण्डाल लोग लोहे के आभूषण पहनते थे।[44] लोहा खरीदने के बाद एक दिन के भीतर ही परीक्षण कर वापस किया जा सकता था।[45] पेरीप्लस में उल्लिखित है कि भारत में बनी इस्पात की तलवारे अफ्रीका को निर्यात की जाती थी।[46] बेसनगर में लगभग 100 ईसवी की एक तलवार प्राप्त हुई थी।[47] कुछ विद्वानों के अनुसार इस्पात का सबसे पहले भारत में निर्माण प्रारम्भ हुआ था, परन्तु अन्य विद्वान इससे सहमत नहीं है। उनके अनुसार एशिया माइनर में ईसा पूर्व तीसरी सहात्राब्दी में लोहा गलाने की तकनीक ज्ञात थी और ईसा पूर्व 1400 के आस–पास हित्तियों ने इसमें पर्याप्त सुधार किया था।[48] प्लिनी (प्रथम शताब्दी ईसवी) ने भारत के उत्कृष्ट इस्पात से बनी तलवारों का उल्लेख किया है और पेरीप्लस में हमें ज्ञात होता है कि अफ्रीका के बन्दरगाहों में भारतीय लोहा एवं इस्पात उपलब्ध थे।[49] संगम युग के तमिल ग्रंथों पुरनानुर एवं अहनानूर में लोहार, निहाई, चर्म की धौकनी तथा कुछ औजारों के विवरण मिलते है।[50] लकड़ी के तरह–तरह के खिलौने भी बनते थे। खेती हल बैल से होती थी, जिनमें लोहे के फाल जैसे उपकरण लगे होते थे। अतएव बड़ी संख्या में बढ़ई हल तथा अन्य कृषि उपकरण बनाते थे। मछुआरे के लिए छोटी–छोटी नाव तथा व्यापार हेतु बड़े–बड़े पोतों का निर्माण निश्चय ही अनुभवी और कुशल कारीगरों के द्वारा संभव हुआ होगा। 'पेरिप्लस' के लेखक ने 'सगर', कोलन्डिया आदि विभिन्न प्रकार के जलपोतों का उल्लेख किया है।[51] पेरूपानारूपडै में एक बड़े जलयान का जिक्र हुआ है– जिनके मस्तूल पर पताके लहराते थे, अश्व चलित रथों की चर्चा भी कई कविताओं में मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजपरिवार के लोग अश्वयुक्त रथ पर चलते थे। यद्यपि, एक कुशल कारीगर के द्वारा एक दिन में आठ रथ बनाने का जिक्र अतिरंजना का दृष्टान्त है।[52] लोहे की जानकारी तमिल प्रदेश में पहले से ही थी। संगम काल में लौह तकनीक का पर्याप्त विकास हो चुका था। लौहे के औजार हथियार और खिलौने तो बनते ही थे, भवन और पोरा निर्माण में भी लोहारों का सहयोग आवश्यक था। युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले नायको की स्मृति में प्रस्तर स्मारक तैयार करने में लोहे के औजारों की जरूरत होती थी।[53] भट्ठी के सहारे लोहार द्वारा औजार निर्माण किया जाता था। पुरनानुरू लोहार की कार्यशाली में हथियार निर्माण और मरम्मत का कार्य होने का उल्लेख करता है। लोहार की कार्यशाला को 'कोरूरै' और 'कोल्बुरै' कहा जाता था।[54] ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ कारीगर पढ़े–लिखे भी थे और उनकी समाज में प्रतिष्ठा थी, यह इस बात से जाहिर है कि संगम काल के कुछ कवि स्वर्णकार और लोहार थे। के० के० पिल्लै ने ऐसे आधे दर्जन कवियों की चर्चा की है।[55] संगम युग में तांबा, मध्य प्रदेश, बिहार, उडीसा, राजस्थान तथा तमिलनाडु की खानों से बहुत प्राचीन काल से प्राप्त किये जाने का उल्लेख मिलता है, इस काल में विभिन्न राजवंशों के राजाओ ने भारी संख्या में तांबे के सिक्के जारी किये थे। याज्ञवल्क्य[56] के अनुसार 100 पल तांबा आग में तपाए जाने पर 5 पल कम हो जाता है, तांबे के बर्तन, उपकरण एवं अन्य वस्तुएँ बनती थी। तक्षशिला के टीले की खुदाई में संगम काल के तांबे तथा कासे के पात्र, औजार, उपकरण एव आभूषण आदि मिले है।[57] पेरीप्लस[58] के अनुसार बेरीगाजा (भड़ौच) के बन्दरगाह से ओमान को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में तांबा भी शामिल था। कांसे के उपकरणों के भी उल्लेख मिलते है।[59] भारत में टीन तथा रांगा अल्पमात्रा में प्राप्त थे, अतः इन धातुओं का बहुत सीमित प्रयोग किया जाता था। महावस्तु में सीसे तथा टीन के कारीगरों को क्रमशः सीसा पिच्चटकार और त्रपुकार[60] कहा गया है। चाँदी भारत में अत्यन्त अल्प मात्रा में उपलब्ध थी, तथापि इस काल में शकों, सातवाहनों तथा कई अन्य राजवशों के राजाओ ने भारी सख्या में चाँदी के सिक्के जारी किये थे। परन्तु चाँदी की अन्य वस्तुएँ अधिक नहीं प्राप्त हुई है, इस काल की स्मृतियों में चाँदी के पात्रों के भी उल्लेख है।[61] नागार्जुनकोण्डा में इक्ष्वाकुओं के समय की मिली दुकानों में से एक को स्वर्णकार की कार्यशाला के रूप में पहचाना गया है, इसमें उसके विभिन्न औजार एवं उपकरण प्राप्त हुए है। नागार्जुनकोण्डा, ब्रह्मगिरि, अरिकामेडु एवं उरैयूर आदि में सोने, चाँदी तथा कांसे के विभिन्न आभूषण तथा

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

उपकरण भी मिले है।[62] इस काल में हाथी दॉत उद्योग भी महत्वपूर्ण था कलिंग राज्य हाथियों के लिए प्रसिद्ध था संभवतः इसीलिए इसकी राजधानी का नाम दंतपुर रखा गया था।[63] पूर्वी मालवा का राजधानी नगर विदिशा भी इस काल में दंत उद्योग का एक प्रमुख केन्द्र था। सांची के महास्तूप के तोरणद्वार विदिशा के दंतकारों ने बनाए थे।[64] पेरीप्लस में दशार्ण (पूर्वी मालवा) के हाथीदांत को दोसरेनिक कहा गया है, महावस्तु में दंतकारक का उल्लेख है।[65] हाथी दाँत से तलवार जैसे औजार एवं दर्पण आदि की मूठ, आभूषण, चौपड़ की गोटिया तथा विलासिता की अन्य बहुत सी कीमती उपकरण बनायी जाती थी, युधिष्ठिर को असम के शासक ने हाथी दाँत की मूठ वाली तलवार भेट की थी।[66] काष्ठ उद्योग से जुड़े हुए शिल्पकार बढ़ई का इस युग में काफी महत्व दिया जाने लगा। बढ़ई मकान के लिए धन्नियों, दरवाजे के चौखट एव पल्ले, बैलगाड़ी, नाव, जहाज, कृषि उपकरण बनाता था। धातु के औजारों में भी बढ़ई का काम होता था। महाभाष्य में गाड़ी के विभिन्न भागों के नाम (चक्र, नेमि, नाभि, एव अक्ष आदि) तथा तक्ष द्वारा इन्हे संयोजित करने का विवरण है।[67] प्लिनी ने लिखा है कि मानसूनी हवाओं की खोज के बाद मालाबार तथा श्रीलंका में 44 टन भार के जहाज बनने लगे थे। बढ़ई के औजारों में वसूला (वासी) एव आराध्आरी (आरी) सर्वप्रमुख थे।[68] मिलिन्दपहों में धनुष–वाण निर्माण में विशिष्टीकरण के साक्ष्य मिलते है।[69] शिल्पियों में चर्मकार का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान था, चर्मकार चर्म को साफ करने के बाद इसे पकाता था और तत्पश्चात् इसकी काट–छाट करके चाबुक, वदिदया, जूते, आवरण एवं तलवार के म्यान आदि बनाता था। पतंजलि ने चर्मकार द्वारा पैर की नाप लेकर जूते बनाने का उल्लेख किया है और पूर्णतया चमड़े से बनने वाले जूते को अर्वचर्माण कहा है, कुछ जूते की तली में लकड़ी आदि लगायी जाती थी।[70] जिसका उपयोग सैनिक लोग करते थे। गांधार की मूर्तियों में बुद्ध को चमड़े की चप्पल पहने दिखाया गया है। वानप्रस्थी एव सन्यासी मृग तथा अन्य पशुओं की खाल पहनते थे। यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर द्वारा रेशमी वस्तु एवं काले मृग का चर्म धारण करने का उल्लेख है।[71] रथ में सारथी के बैठने का भाग चमड़े से मढ़ा जाता था।[72] प्राचीन भारत के शिल्पकारों ने कांच के उपकरणों का भी निर्माण ईसा पूर्व पाँचवी सदी से ही बड़ी मात्रा में करने लगे थे।[73] मार्शल के अनुसार कम से कम प्रथम सदी के अंत तक भारतीय कारीगारों ने शीशे को पिघलाकर उपकरणों के निर्माण की तकनीक नहीं सीखी थी।[74] सुश्रुत संहिता[75] तथा महाकाव्यों में काँच एवं इससे निर्मित वस्तुओ के विवरण मिलती है। रामायण में शीशे के कारीगर को कांचकार[76] कहा गया है। महाभारत से हमें पता चलता है कि परीक्षित ने सुरक्षा के लिए शीशे के राजप्रसाद का निर्माण कराया था।[77] प्लिनी ने भारत के शीशे को अन्य देशों के शीशे से उत्तम कोटि का बताया है।[78] निसन्देह कहा जा सकता है कि शिल्प विद्या को रहस्यमय जाल से उपकरणों ने मुक्त कराया, एक नवीन सामाजिक श्रेणी शिल्पकार एवं कर्मकार को विकसित करने का श्रेय उपकरणों का था। सभ्यता का मार्ग उपकरणों ने प्रशस्त किया। उपकरणों के अभाव में कृषि योग्य भूमि का विस्तार असंभव था, इसने यथार्थ विज्ञान को जन्म दिया। लौह–उपकरणों से ग्रामीण आबादी को स्वतंत्रता के वास्तविक लाभों का भाग उपलब्ध कराया। उपकरणों ने व्यक्तियों को दैवी सम्राट और युद्ध मुखिया के शिकंजो से बाहर कराया। आदर्श समाज उपकरणों का ही परिणाम था। विज्ञान को जादूगर के कब्जे से मुक्त कराने के श्रेय उपकरणों को है। उपकरणों ने ही वैज्ञानिक, ज्योतिष और गणितीय भूगोल का मार्ग प्रशस्ति किया, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास सामाजिक शून्य में नहीं हो सकता। प्रत्येक विज्ञान और प्रौद्योगिकी सामाजिक आवश्यकता से किसी विशेष सामाजिक पृष्ठभूमि में ही जन्म लेती और पनपती है।

I UnHk&I iph

1. कैलाशचन्द्र जैन, प्राचीन भारतीय सामाजिक एव आर्थिक सस्थाएँ, भोपाल, 1995, पृ०–143

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 5, October 2026
Impact Factor: 8.2

2. कामेश्वर प्रसाद, विहार में भौतिक सस्कृति का पुरातात्विक अध्ययन (प्रस्तर युग से लौह युग तक), प्रभात कुमार शुक्ल सम्पादित– 'इतिहास', अक–1, भाग–1, दिल्ली जनवरी–दिसम्बर, 2003, पृ०–12
3. किरण कुमार थपल्याल और सकटा प्रसाद शुक्ल, सिन्धु सभ्यता, लखनऊ, 1992 पृ०–128–135
4. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली, 1992, पृ०–142
5. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली 1992, पृ०–142
6. आर०सी० मजुमदार, क्लासिकल एकाउट्स, पृ०–237–238
7. मैक्रिडल, मेगास्थनीज ऐड एरियन, पृ०– 30
8. दीर्घ निकाय, 23, 17
9. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, इलाहाबाद, 1997, पृ०–140
10. आर० के० मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता, पृ० 291
11. मिलिन्दपञ्हो, 331 एपि० इंडिका, 2, 41
12. जातक, 6/71
13. जातक, 3/281
14. डायोडोरस, 2/41
15. अतीन्द्रनाथ बोस, सोशल एण्ड रूलर इकोनामी ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ०– 239
16. अर्थशास्त्र, 2, 18
17. धम्मपद, 33, 80
18. जी०एल० आहया, अर्ली इडियन इकोनोमिक्स, पृ०–5
19. पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी, 7/40/41
20. मार्शल, तक्षशिला, भाग–2,
21. अर्थशास्त्र, 2,12
22. एस ऑफ नन्दज एण्ड मौर्यज, पृ०–73
23. एस आफ नन्दज एण्ड मौर्यज, पृ०–73
24. इंडियन आर्कियोलॉजी, 1973–74 ए रिव्यु, पृ०–4
25. इंडियन आर्कियोलॉजी, पृ०–6–157
26. राम शमण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ०– 157
27. जी०एल० आह्या, अर्ली इण्डियन इकोनोमिक्स, पृ०–58
28. महावग्ग, 1,56,396,
29. जातक, 2, 18
30. जातक, 4, 207
31. मेगस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण, पृ०– 49
32. आचाराडग सुत, 2/4, 2/11

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in
DOI: 10.48175/IJARSCT-40183

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 5, October 2026
Impact Factor: 8.2

33. अतीन्द्रनाथ बोस, सोशल एण्ड रूलर इकोनामी ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ०–238
34. महाभाष्य, 8/3/102
35. जी०एल० आह्या, अर्ली इण्डियन इकोनोमिक्स, पृ०–58
36. महाभाष्य, 8/3/102
37. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/297
38. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/177
39. महाभाष्य, 1/4/23
40. महाभाष्य 40 वहीं, 4/4/18, 7/3/47
41. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/178
42. सी० चम्पकलक्ष्मी, ट्रेड, आइडियोलॉजी एण्ड अर्बनाइजेशन, सारथ इडिया 3000 वीसी टू एडी 1300 आक्सफोर्ड, न्यूयार्क, 1976, पृ० 94
43. पतंजलि कालीन भारत, पृ०–314
44. मनुस्मृति, 8/271
45. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/177
46. जी०एल० आह्या, अर्ली इण्डियन इकोनोमिक्स, पृ०–52
47. जी०एल० आह्या, अर्ली इण्डियन इकोनोमिक्स, पृष्ठ–51
48. कर्नल डगलस हैमिल्टन गार्डेन, रिकार्ड्स ऑफ स्पोर्ट इन साउथ इण्डिया, पृ0 154
49. ई0एच0 वार्मिंगटन, प्राचीन व्यापार, पृ०–257
50. एन०आर० बनर्जी, आयरन ऐज, पृ०–162
51. अवध किशोर प्रसाद, संगम साहित्य और सस्कृति, पटना, 1998, पृ०–28
52. के०के० पिल्लै, ए सोसल हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स, मद्रास, 1969, पृ०–201
53. के. के. पिल्लै, ए सोसल हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स मद्रास, 1969, पृ0 204
54. के. के. पिल्लै, ए सोसल हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स मद्रास, 1969, पृ0 204
55. के. के. पिल्लै, ए सोसल हिस्ट्री आफ दि तमिल मद्रास, 1969, पृ0 205
56. याज्ञवल्क्य, 2/178
57. जी०एल० आह्या, अर्ली इण्डियन इकोनोमिक्स, पृ०–58
58. जी०एल० आह्या, अर्ली इण्डियन इकोनोमिक्स, पृ०–55,
59. चरक सूत्रस्थान, 5/71, सुश्रुत, सूकस्थान, 8/22
60. संस्कृत बौद्ध साहित्य में भारतीय जीवन, पृ०–211
61. मनु, 5/122, याज्ञवल्क्य, 1/182
62. साउथ इडियन स्टडीज, पृ०–62–63
63. अतीन्द्रनाथ बोस, सोशल एण्ड रूलर इकोनामी ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ०–278

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 5, October 2026
Impact Factor: 8.2

64. इण्डियन आर्कियोलाजी, पृ०—278
65. महावस्तु, 3, 113/6—119
66. महाभारत, भीष्मपर्व, 96/50 सभापर्व, 51/16
67. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत पटना, 1963, पृ०— 311—12
68. महाभाष्य, 1/2/45
69. मिलिन्दपञ्हो, पृ०—331
70. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत, पृ०—311
71. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत, पृ०—311
72. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत, पृ०—322
73. मेमोयर्स ऑफ द आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, स० 65, पृ०—28
74. मार्शल, तक्षशिला, भाग—2, पृ०—385
75. सुश्रुत सहिता, अध्याय, 46
76. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, इलाहाबाद, 1997, पृ०—151
77. महाभारत, आदिपर्व, 1/42
78. प्लिनी, नेचुरल हिस्ट्री, 37/77—78